

## AFEIAS - 29-04-2016 (Important News Clippings)



### ‘रिवर्स माइग्रेशन’ की हकीकत जानने आज सलामतपुर जाएंगे राजन (दैनिक भास्कर)

काम की तलाश में युवा जब गांव छोड़कर शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं तब भोपाल का सलामतपुर रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के गवर्नर रघुराम राजन के लिए एक अनूठा उदाहरण बनकर आया है।

भोपाल में काम कर रहे युवाओं ने अपने पुश्तैनी गांव सलामतपुर में लौटकर ‘रिवर्स माइग्रेशन’ की जो सक्सेस स्टोरी गढ़ी है उसे जानने के लिए रघुराम राजन शुक्रवार को खुद वहां जा रहे हैं। वे वहां देखेंगे कि इस गांव में ऐसा क्या चमत्कार हुआ कि लोग रोजगार के लिए शहर छोड़कर गांव लौट रहे हैं। राजन करीब डेढ़ घंटे गांव वालों के बीच रहेंगे।

भोपाल से 40 किमी दूर है सलामतपुर। यहां 5227 परिवार रहते हैं। चार साल पहले तक एक परिवार की औसत कमाई करीब 4 हजार रुपए थी। युवाओं के पास काम नहीं था। छोटी-मोटी नौकरी के लिए वे भोपाल और अन्य शहरों की ओर रुख कर रहे थे। ऐसे में गांव के लोगों ने बीड़ा उठाया। स्व-सहायता समूह बनाए। गांव में ही लोगों को रोजगार मिल सके, इसके लिए बैंकों की सहायता मांगी। ल्युपिन फाउंडेशन ने उनकी मदद की। उसने बैंकों को गारंटी दी कि स्व-सहायता समूह कर्ज की अदायगी समय पर कर देंगे। इसके बाद बैंक उन्हें 10 प्रतिशत से कम ब्याज पर कर्ज देने को राजी हो गए। इंडियन बैंक छह साल से हर माह यहां कैंप लगाता है और लोगों की जरूरतें पूरी करता है। बैंक अब तक 22.85 करोड़ रुपए का कर्ज दे चुका है। कर्ज की अदायगी भी 100 प्रतिशत है। कई युवा गांव लौट चुके हैं। इन्हीं में से एक उदाहरण है आरिफ, जो रिपेयरिंग की दुकान खोलकर 15 से 20 हजार रुपए महीना कमा रहा है। चार साल बाद अब गांव के एक परिवार की औसत आय भी दोगुनी यानी 8 हजार रुपए महीना हो चुकी है।

**एनपीए घटाने और कर्ज बढ़ाने को कहा**

गुरुवार को भोपाल पहुंचे राजन ने आरबीआई के जोनल कार्यालय में जाकर कर्मचारियों का हौसला बढ़ाया। उन्हें दक्षता बढ़ाने का संदेश दिया। इसके बाद वे मध्यप्रदेश के तीन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक आरआरबी के मुखियाओं से मिले। उन्हें एनपीए घटाने और कर्ज बढ़ाने को कहा। आरबीआई के प्रवक्ता अल्पना किल्लावाला ने कहा कि राजन भोपाल में पैदा हुए थे। इसलिए उनका इस शहर के खास इमोशनल एटेचमेंट है। वे यहां बैंकों और विभिन्न समूहों के कामकाज के तरीकों को समझने आए हैं। कोशिश सीख देने के बजाय सीखने की है।

- राजन भोपाल में पैदा हुए हैं। कहा जा रहा है कि मप्र सरकार उन्हें जन्म प्रमाण-पत्र सौंपेगी।

- दुनिया के नामचीन अर्थशास्त्री। 2008 की आर्थिक मंदी की भविष्यवाणी की थी।

-आईआईटी दिल्ली और आईआईएम अहमदाबाद में पढ़ाई की। वे 2003-2006 तक आईएमएफ के मुख्य अर्थशास्त्री रहे।

---

## विकास के ममता मॉडल ने किया माओवाद बेअसर (दैनिक भास्कर)

भारत के कई राज्यों में माओवादी संगठन राजनीतिक तौर पर भले चुनौती नहीं बन पाए हों, सुरक्षा के लिए चुनौती बने हुए हैं। इसका पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने जिस सकारात्मक दृष्टि के साथ मुकाबला किया, वह माओवाद प्रभावित बाकी राज्यों के लिए एक उदाहरण है। ममता ने पुलिस और अर्द्ध-सैनिक बलों के बूते माओवादी आंदोलन से निपटने की बजाय शांतिपूर्ण सह अस्तित्व की अवधारणा को आजमाया।

पांच साल पहले मुख्यमंत्री बनते ही ममता ने माओवादियों के मध्यस्थों से शांति वार्ता शुरू की और यह स्वीकार करने में देर नहीं की कि माओवादियों की हिंसा कानून और व्यवस्था का मामला नहीं है, विकास की गलत नीतियों का नतीजा है। आदिवासी बहुल इलाकों में माओवादी जिस तरह का विकास चाहते हैं, ममता ने पिछले पांच वर्षों के अपने कार्यकाल में उसी तरह का विकास सुनिश्चित किया। उन्होंने जनजातियों के जीवन संसाधन की सुरक्षा सुनिश्चित करते हुए स्थायी तथा टिकाऊ विकास की परियोजनाएं शुरू कर माओवादी समस्या को लगभग हल कर लिया।

ममता सरकार ने जल-जंगल-जमीन पर स्थानीय आदिवासी समूहों के स्वामित्व को औपचारिक स्वीकृति देते हुए विकास के जो काम किए, वह दिखने भी लगे हैं। माओवाद प्रभावित पश्चिम बंगाल के जंगलमहल के तीन जिलों- पुरुलिया, मेदिनीपुर व बांकुड़ा में हर ब्लॉक सड़क से जुड़ गया है। क्षेत्र के आधे से अधिक हाईस्कूल इंटर कॉलेज में बदल गए हैं। नए डिग्री कॉलेज खुले हैं। हर ब्लॉक में छात्रावास बने हैं। जंगलमहल की माध्यमिक व उच्चतर माध्यमिक की सैकड़ों आदिवासी छात्राओं को साइकिलें उपलब्ध कराई गईं और हजारों आदिवासी नौजवानों की जूनियर पुलिस के रूप में भर्ती की गईं।

हर आदिवासी परिवार को बीपीएल कार्ड और भूमिहीनों को जमीन का पट्टा दिया गया। इन विकास कार्यों के समानांतर ममता ने आदिवासियों की बौद्धिक संपदा के दस्तावेजीकरण, जनजातियों की कलाओं व उनकी सांस्कृतिक धरोहर तथा कृषि व औषधि के बारे में आदिवासियों के देशज ज्ञान को बढ़ावा देने की

ठोस पहल भी की। इससे आदिवासियों का जहां ममता सरकार के प्रति अटूट भरोसा पैदा हुआ, वहीं माओवादी अलग-थलग पड़ते गए। वाम शासनकाल में जहां तीनों जिलों में प्रतिदिन रक्तपात होता था, वहीं ममता के कार्यकाल में जंगलमहल शांत रहा है।

भारत के कई राज्यों का जंगल गलियारा अशांत है। मुख्य वजह है जंगल पर से जंगल-जीवियों का अधिकार छीना जाना। विशेष आर्थिक क्षेत्र की आड़ में आदिवासी उजाड़े जा रहे हैं। विकास परियोजनाओं में आदिवासियों को विश्वास में नहीं लेना उनके साथ अन्याय है और न्याय की छटपटाहट ने ही उन्हें माओवादियों के निकट पहुंचाया है। न्यायपूर्ण समाज गढ़ने की चुनौती को ममता ने जिस तरह स्वीकार किया और अशांति पैदा करनेवाले कारकों को समूल नष्ट करने की रणनीति बनाई, वही सैद्धांतिकी अख्तियार कर ही दूसरी राज्य सरकारें इस चुनौती का मुकाबला सफलतापूर्वक कर पाएंगी।

ममता की तरह दूसरी राज्य सरकारों को इस पर भी गंभीरता से विचार करना चाहिए कि जनजातीय संस्कृतियां देश के लोकतांत्रिक ढांचे के भीतर स्वयं को आहत और उपेक्षित क्यों महसूस करती हैं? माओवादियों के संघर्ष के तरीके पर असहमति है, लेकिन उनके द्वारा उठाए मुद्दों पर असहमति नहीं है। उन्हें हल करने की बजाय राज्य सरकारों ने सख्ती का रास्ता अपनाया। नक्सल दमन के लिए जन सुरक्षा अधिनियम और गैरकानूनी निरोधक कानून को कड़ाई से लागू किया गया। उन कानूनों के खिलाफ, राज्य सत्ता के खिलाफ माओवादियों ने युद्ध छेड़ रखा है। यदि माओवादी हिंसा को रणनीति बनाते रहेंगे तो जाहिर है कि शासन को भी अपनी हिंसा को वैध ठहराने का बहाना मिलता रहेगा। कहने का आशय यह है कि हिंसा कोई निदान नहीं है। निदान है ममता मॉडल।

---

## करगिल के समय अमेरिका ने मदद से मना किया, आज भारत ने बना लिया अपना जीपीएस (दैनिक भास्कर)

देशने गुरुवार को बड़ी कामयाबी हासिल कर ली। इसरो ने आईआरएनएसएस का आखिरी और 7वां उपग्रह कक्षा में स्थापित कर दिया। और अमेरिका के ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम (जीपीएस) के मुकाबले अपना रीजनल पोजिशनिंग सिस्टम (आरपीएस) बनाने का टास्क पूरा हो गया है। इसरो वैज्ञानिक 17 साल से इस काम में लगे थे। भारत 1973 से ही अमेरिकी जीपीएस पर निर्भर रहा है। पर करगिल युद्ध के समय घुसपैठ करने वाले पाकिस्तानी सैनिकों की पोजिशन बताने से अमेरिका ने मना कर दिया था। तब हमारी सेना को इसकी सबसे ज्यादा जरूरत थी। इसके बाद इसरो ने तय किया कि वह अपना रीजनल पोजिशनिंग सिस्टम बनाएगा। इस कामयाबी के साथ ही अमेरिका और रूस के बाद भारत अब तीसरा देश बन गया है जिसके पास अपना नेविगेशन सिस्टम है।

आरपीएसके 6 उपग्रह पहले ही लॉन्च किए जा चुके थे। इस सिस्टम से जुलाई के बाद देश के चारों तरफ 1500 किमी तक की सटीक जानकारी मिलनी शुरू हो जाएगी। हालांकि आम लोगों को इसका पूरा फायदा मिलने में एक से डेढ़ साल लग सकते हैं। इस काम में इसरो के बेंगलुरु स्थित ब्यालालू, जोधपुर, उदयपुर, भोपाल समेत कई सेंटर्स की अहम भूमिका होगी। भोपाल में इसके लिए तीन स्टेशन बनाए गए हैं।

## जानकारी के लिए सार्वजनिक वाला भारत तीसरा देश

20 मिनट की उड़ान में  
पीएसएलवी-सी33 ने  
1,425 किग्रा के उपग्रह को  
497.8 किमी ऊंचाई पर  
स्थापित कर दिया।  
1420 करोड़ रु. लागत

### भारत को फायदे

- अमेरिकी सिस्टम पर निर्भरता से निजात मिलेगी।
- सेना को अपनी नेविगेशन, पोजिशनिंग और जियो-मैपिंग की सुविधा मिलेगी।
- प्राकृतिक आपदाओं में निगरानी में मदद मिलेगी।
- स्थानीय मोबाइल लोकेशन हासिल करेंगे।
- जहाज, विमान, बस, रेल की सटीक जानकारी।
- विजुअल-वॉयस नेविगेशन से ड्राइवरों के लिए सुविधाजनक रास्ते की जानकारी मिलेगी।



### भारत को फायदे

अमेरिकी सिस्टम पर निर्भरता से निजात मिलेगी।  
सेना को अपनी नेविगेशन, पोजिशनिंग और जियो-मैपिंग की सुविधा मिलेगी।

प्राकृतिक आपदाओं में निगरानी में मदद मिलेगी।

स्थानीय मोबाइल लोकेशन हासिल करेंगे।

जहाज, विमान, बस, रेल की सटीक जानकारी।

विजुअल-वॉयस नेविगेशन से ड्राइवरों के लिए सुविधाजनक रास्ते की जानकारी मिलेगी।

इस सेवा को नाविक के नाम से दुनिया जानेगी। अब हमारे रास्ते हम तय करेंगे। सार्क देशों ने कहा तो उन्हें भी ये सुविधा देंगे।' -नरेंद्र मोदी,

प्रक्षेपण के बाद

20 मिनट की उड़ान में

पीएसएलवी-सी33 ने

1,425 किग्रा के उपग्रह को

497.8 किमी ऊंचाई पर स्थापित कर दिया।

1420 करोड़ रु. लागत

## A cop-out called prohibition (Indian Express)

***It is a poor policy option. Alcohol abuse is a public health, not moral, problem.***

Prohibition of alcohol is back on the political agenda with the recently elected Bihar government banning its sale and consumption to fulfil a key electoral promise. Other parties, such as the DMK and the AIADMK in Tamil Nadu and the [Congress](#) in Kerala, are also championing this cause. These states join a growing list, including Gujarat, a clutch of northeastern states and Lakshadweep, in imposing a policy which is currently not practised in any country outside the Islamic world. That prohibition can win elections is a vivid reminder of the tragic social consequences of alcohol consumption in the form of household impoverishment, domestic violence and premature mortality. That these policies are completely at odds with history and public health science testifies to the failure of our commonsense.

There is no evidence to show that prohibition has ever had its intended impact. Of course, just as banning beef has reduced beef consumption, banning alcohol will lead to reduced alcohol consumption. But, there appears to be little or no correlation between, say, domestic violence or household impoverishment and prohibition. Instead, there is an enormous cost to society, and here I refer not to the obvious massive losses to the exchequer but to the criminalisation of the majority of people who drink sensibly to address the problems caused by the minority who do not. It is, in effect, equivalent to banning motor cars because a few drive rashly.

Prohibition is a very poor policy option to address the adverse consequences of alcohol abuse when compared with a range of more effective public health approaches. The most notable international example of the failure of prohibition is that of the US where a constitutional amendment implemented this policy in the 1920s, only to be revoked 13 years later. The reason was simple: The policies led to the criminalisation of an entire section of the population, from those who manufactured the product to those who consumed it. It replaced a way of life which is as old as mankind with a corrupt nexus of smugglers, police, politicians and bootleggers.

The story is no different in India. As any reader of this paper who has been invited to a party in Ahmedabad can testify, the truly remarkable thing about prohibition in Gujarat is the range of alcoholic brands which are served in private homes. Of course, this is restricted to the rich who bypass regulations by virtue of being able to buy “permits” on

medical grounds and escape police harassment. Lisa McGirr argues in her recent book, *The War on Alcohol*, that the enforcement of prohibition in the US was intrinsically biased against the poor, the working class, immigrant communities, and the marginalised. Prohibition, like so many other policies imposed from the moral high-ground, typically by those who do not drink, disproportionately affects the poor who resort to illegally brewed alcohol when they want a drink, not infrequently leading to their death, and are more likely to be harassed by the police.

Prohibition is rejected by most public health scientists who know this field; even the World Health Organisation does not recommend it. The complete lack of a public health approach to alcohol abuse in India is illustrated by the way in which the government has permitted the shameless surrogate advertising of alcohol by corporations, for example, through selling “bottled water” under the same brand names as their much better known alcoholic beverages. Amongst the many crimes Vijay Mallya seems to have gotten away with, that he could run an airline named after the most popular alcoholic beverage in the country has been perhaps the most damaging of all in terms of its impact on the burden of disease in India.

India remains one of the few nations which still focuses entirely on an archaic de-addiction model, administered by the ministry of social justice and empowerment, to address drinking problems, adhering to a centuries-old idea of these problems being a moral disorder rather than a health condition. There is a total absence of effective counselling interventions for those who wish to control their drinking. Instead, we live in such surreal times that “medicinal grounds” is the one situation in which drinking is permissible in states where prohibition is enforced. Essentially, this means that a person who wishes to drink can obtain a permit, after paying the required fee to a malleable physician, because he is a sharabi and his life would be threatened without a drink. This, of course, is the precise group who in any other country would have been offered psychological or medical interventions to control their drinking!

So, let us be prepared for more criminal activity, more deaths amongst the poor fuelled by illegally brewed poisonous alcohol, more hard liquor being drunk secretly in dingy corners, more corruption in the police force and more misery for those who wish to drink sensibly.

Prohibition of substances which give pleasure to people does not work. Addiction is a health problem, not a moral one, and there are many proven strategies which can reduce its burden. The desire to address the serious social problems caused by a minority of those who consume alcohol by prohibition is a travesty of the experience of history and public health science. When Mizoram repealed prohibition in July 2014, 17 years after it

had been imposed, its excise minister explained that he had proposed this bill so that “those people who cannot do without drinks can find good quality liquor at cheaper prices”. He also claimed that he had “asked god to prevent me from introducing the bill in the assembly if that is what he really wanted”. Clearly, god had commonsense. Do our politicians?

---

## Crackpot remedies: From prohibition to even restricting cooking, Bihar government goes overboard (The Times of India )

The Bihar government has gone overboard with its advisory to citizens telling them not to perform havans or even cook between 9am to 6pm, on pain of punishment that may include jail. The move is meant as a preventive measure to minimise fires. But besides being an unwarranted intrusion into the personal domain, it is utterly impractical. It is like banning people from taking out cars on roads, in order to minimise the risk of road accidents. Political leaders need to come up with better ideas than this.

The government’s reasoning that cooking fires in heavy winds have been causing an epidemic of fires is flawed. Instead of striving to pinpoint the reasons for the eruption of village fires and taking practical, precautionary measures, it is tilting at windmills. Strong westerly winds in the smouldering summer have led to incidents of fire that have resulted in over 60 people and over a thousand livestock dead this month. Most recently this week, nearly 300 huts were burnt in Begusarai district. This is certainly a public safety issue that warrants attention. But it needs measured administration and surveillance, not knee-jerk reactions. What if heavy winds should blow after 6pm? Should cooking meals be stopped altogether?

The cooking ban is reflective of an intrusive state, as is the prohibition imposed by chief minister Nitish Kumar. Unfortunately bad ideas are infectious in India and the prohibition fad is being lapped up by the political class across states. Despite overwhelming evidence across the world that prohibition only leads to an unholy nexus between a liquor mafia and law enforcement agencies – besides endangering the health of many who drink hooch – Congress in Kerala and all major political parties in Tamil Nadu have promised prohibition in some form during the current assembly election campaign. This is again an example of mistaking symptom for cause.

If the reason for adopting prohibition is domestic violence in families, the only way to curb domestic violence is sharp policing combined with awareness campaigns. That is what government policy must be oriented towards, rather than chasing red herrings. The consequences of prohibition in Bihar have already started to show: four people died after consuming spurious liquor, even as the state is set to lose thousands of crores of rupees in excise duty. For someone with prime ministerial ambitions, Nitish must come up with more imaginative ideas than prohibition.

---

## वैचारिक उलझाव का दौर (दैनिक जागरण )

यह देखना-सुनना विचित्र है कि वैचारिक उलझाव किस प्रकार सेक्युलरिज्म और राष्ट्रवाद को एक दूसरे के सामने खड़ा कर सकता है। दुर्भाग्य से यह हमारी आंखों के सामने ही हो रहा है। राष्ट्रवाद अर्थात् नेशनलिज्म को विदेशी विचार बताया जा रहा है, जबकि हमारे देश में राष्ट्रीयता आदि शंकराचार्य के काल से चली आ रही है, जिन्होंने देश की चारों दिशाओं में मठ स्थापित किए थे। कोई राष्ट्रवाद को विदेशी और उसी सांस में सेक्युलरिज्म को देशी नहीं कह सकता। इसलिए और भी नहीं, क्योंकि सेक्युलरिज्म कुल मिलाकर विदेशी विचार ही है। जेएनयू में कश्मीर की आजादी, भारत के टुकड़े-टुकड़े करने और अफजल के कातिलों के जिंदा रहने पर शर्मिंदा होने वालों को मीडिया का एक हिस्सा अभी भी हाथों हाथ लिए है। कोई नहीं पूछा रहा कि अगर बात बेरोजगारी और शोषण से आजादी की थी तो उसमें भारत के टुकड़े करने, अफजल के कातिलों के जिंदा होने की बात कहां से आ गई? जाहिर है कि वैचारिक धरातल पर सार्थक बहस से इंकार किया जा रहा है। सेक्युलरिज्म तो राष्ट्रवाद को सशक्त करने वाली संगिनी है। दोनों में विरोधाभास की गुंजाइश नहीं है। दरअसल हम विचारशून्यता की स्थिति से गुजरते हुए उस दौर में हैं जहां हमारे परिवर्तन को परिभाषित करने वाले विचारों को भीषण अकाल है। जब चिंतकों का टोटा पड़ जाता है तब छद्मवेषियों की पौ-बारह हो जाती है। आधुनिक समय के हमारे श्रेष्ठतम विचारक, चिंतक और दृष्टा गांधी जी थे। लोहिया जी को समय कम मिला, जयप्रकाश जी के संपूर्ण क्रांति के विचार को तो समझा ही नहीं जा सका। तब से विचारशून्यता की सी स्थिति है और पता नहीं कि यह यह दौर कब समाप्त होगा। कम्युनिस्ट व्यवस्था के पराभव और उससे मोहभंग के परिणामस्वरूप उत्पन्न वैचारिक निर्वात को अभी भरा नहीं जा सका है। जो कुछ बहसों कहीं दिखती भी हैं वे वैचारिक अराजकता की दिशा में ले जाती हैं।

आज परिवर्तन और विचारों की दुकानें बंद हैं। विचारों की जिंदगी के लिए उनका स्वतःस्फूर्त होना और अपनी जमीन से पैदा होना भी जरूरी होता है। आयातित विचार कभी भी परिवर्तन अथवा क्रांतियों के वाहक नहीं बनते। हमने देश में माओवाद का उदाहरण देखा है। यह माओवाद किसी वैचारिक प्रतिबद्धता के बजाय हिंसा का साथी हो गया है? यद्यपि हिंसा माओवादी का आधारभूत घटक है, लेकिन यह हिंसा वैचारिक गहनता के बाद उत्पन्न होती है। लेनिन ने सोवियत रूस की क्रांति को मजदूरों की क्रांति का नाम दिया और माओ ने चीन में इसे किसानों की क्रांति कहा। हमारे यहां जो माओवादी अभियान चल रहा है, क्या उसे हम आदिवासी क्रांति कहेंगे? यदि ऐसा नहीं है तो फिर क्रांति के इस आवरण का क्या हश्र होने वाला है? क्रांतियों का एक इतिहास है। अमेरिकी क्रांति, फ्रांस की राज्य क्रांति और रूस एवं चीन की क्रांति। प्रत्येक क्रांति एक दूसरे से प्रकृति में भिन्नता लिए हुए रही। कोई भी एक-दूसरे की नकल नहीं है।



माओ ने लेनिन से प्रेरणा ली, लेकिन अपने को लेनिनवादी या स्टालिनवादी नहीं कहा, लेकिन अपने यहां चूंकि मौलिक वैचारिकता का अभाव है अतः इसे चीन की तर्ज पर माओवाद का नाम दे दिया गया। इसे यदि कानू सान्यालवाद या चारू मजूमदारवाद का नाम दिया जाता तो भी समझ में आता, लेकिन इस परिवर्तन की कामना के प्रस्फुटन को माओवाद का नाम देकर इसके भारतीय क्रांति बनने की संभावनाओं पर स्थायी विराम लगा दिया गया। नक्सलवाद तक गनीमत थी, लेकिन माओ? जिसे सारा भारत भारत-शत्रु और हमलवार के रूप में जानता है वह इस देश के लोगों का प्रेरणास्त्रोत कैसे बन सकता है? हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था के वर्तमान स्वरूप को लेकर बहस की गुंजाइश है, लेकिन आम तौर पर बहस व्यक्तियों, दलों और संगठनों को लेकर होने लगती है। किसी को खलनायक और किसी को आदर्श सिद्ध करने का मैच प्रारंभ हो जाता है। इस पर एक बहस हो सकती है कि देश की वर्तमान स्थितियों और आने वाले वक्त के मद्देनजर हमारी वर्तमान लोकतांत्रिक प्रणाली और अमेरिकन राष्ट्रपति प्रणाली में से कौन सी हमारे लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगी? क्या इस परिवर्तन में हमें अपने लोकतंत्र को अधिक सक्षम बनाने का अवसर नहीं मिलेगा? हम देखते हैं कि राज्य सरकारें अपने विकास के एजेंडे की तुलना में सरकार को बचाए रखने के लिए कहीं ज्यादा परेशान रहती हैं। उत्तराखंड का संकट इसका उदाहरण है। जनता से सीधे निर्वाचित मुख्यमंत्री अथवा राज्यपाल की स्थिर व्यवस्था आर्थिक विकास को निश्चय ही मजबूती प्रदान करेगी और भावी राष्ट्रीय नेतृत्व की भूमिका भी बनाएगी। यह जरूरी है कि ग्रामों, नगरों के आर्थिक विकास के विभिन्न माडलों पर बहस चले, लेकिन लोग विकास के प्रारूपों पर चर्चा में खुद का असमर्थ पाकर सरकारों को कोसने लगते हैं। हमारी बहस गुणात्मक परिवर्तन वाले बिंदुओं पर नहीं होती।

देश में ऐसे भी वर्ग सशक्त हो रहे हैं जो विखंडित भारत के सपने देखते हैं। क्या हमारे अंदर तक पैठा हुआ जाति-संप्रदायवाद हमारी क्रांतियों का लक्ष्य नहीं बनेगा? क्रांतियां भले ही नई समस्याएं दे देती हों, लेकिन वे वर्तमान को दंशित कर रही शक्तियों और जड़ताओं का समूल नाश तो कर ही देती हैं। हमारे सामने टर्की के कमाल अतातुर्क का उदाहरण है कि किस प्रकार अपने अधिनायकवादी परिवर्तन से उसने पुरानी सड़ांध मारती व्यवस्था को खत्म कर थोड़े से ही समय में टर्की को एक सशक्त, आधुनिक, सेक्युलर और शिक्षित देश बना दिया था। क्रांतियां कोई रोमांस नहीं होती, लेकिन उनके सपने देखने वालों की जरूरत पड़ती है। कहां हैं वे लोग जो परिवर्तन की बेचैनी बड़ी शिद्दत से महसूस करते हैं? आज भले ही वे कहीं नहीं दिख रहे हैं, लेकिन इस देश को चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह जैसे क्रांतिधर्मी चरित्रों के सांचों में ढली अगली पीढ़ियों का इंतजार तो रहेगा ही।

[लेखक कैप्टन आर विक्रम सिंह, भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी हैं]

# बकायेदारों पर सख्ती जरूरी

वेबिनार 28-4-16

हाल ही में वैश्विक ख्याति प्राप्त संगठन मूडीज इन्वेस्टर सर्विस द्वारा 26 अप्रैल को प्रकाशित रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का लंबे समय से बढ़ता एनपीए (वसूली नहीं हो रहे कर्ज) बड़े बैंक बकायादार भारत की वित्तीय साख के लिए खतरा है। मूडीज ने कहा कि सरकार को बैंक बही खाते की सफाई के लिए कुछ लागत वहन करनी चाहिए। लेकिन भारत में एनपीए सीमा से बहुत अधिक बढ़कर राजकोषीय स्थिति पर असर डाल रहा है। 21 अप्रैल को वित्त मंत्री अरुण जेटली ने कहा कि यह सुनिश्चित करना बैंकों की जिम्मेदारी है कि कई बैंक डिफॉल्टर (ऋण नहीं चुकाने वाला) बच न सकें। यह भी सुनिश्चित किया जाना होगा कि सिर्फ भारत की भौगोलिक सीमाओं के बाहर चले जाने से कोई भी बैंक डिफॉल्टर बैंक की देनदारी से बच न सके। इसी प्रकार 17 अप्रैल को उद्योग मंडल एसोसिएम की रिपोर्ट में कहा गया है कि मार्च 2016 के अंत तक बैंकों की कुल दबाव वाली संपत्तियां (एनपीए और पुनर्गठित संपत्तियां) बढ़कर 10 लाख करोड़ रुपये पर पहुंच गई हैं। बैंकों की ऐसी दबाव वाली संपत्तियों को बैंकों के बड़े कर्जदाताओं की संख्या चिंताजनक रूप से बढ़ गई है।

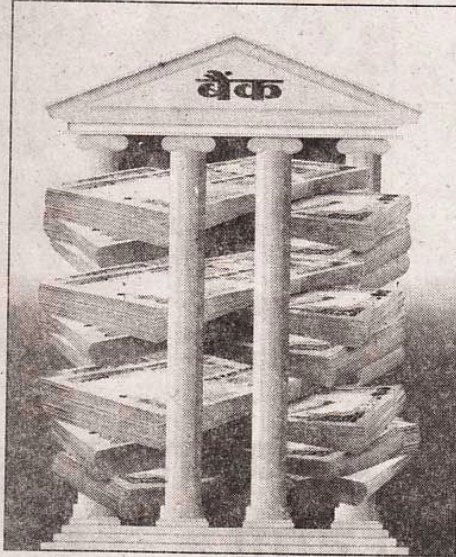
इसी परिप्रेक्ष्य में पिछले दिनों उच्चतम न्यायालय ने बैंकों के डूबे कर्ज पर भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) और केंद्र सरकार को कड़ी फटकार लगाते हुए पूछा कि आखिर किस तरह से लोग और कंपनियां बैंकों का करोड़ों रुपये का कर्ज बिना चुकाए देश से बाहर भाग जाते हैं? यह भी पूछा कि कर्ज चूककर्ताओं से वसूली के लिए सरकार द्वारा क्या कदम उठाए जा रहे हैं। शीर्ष न्यायालय ने यह भी जानना चाहा कि बैंकों और वित्तीय संस्थानों ने किस प्रकार से उचित दिशा-निर्देशों का पालन किए बगैर इतनी बड़ी राशि कर्ज में दी? यह भी पूछा गया कि हर साल देश में करोड़ों रुपये के कर्ज चूककर्ताओं का मामला यों ही क्यों बंद कर दिया जाता है? न्यायालय ने आरबीआई से सख्त लहजे में कहा कि एक नियामक के रूप में उसकी यह जिम्मेदारी बनती है कि ऐसे मामलों पर वह सख्त निगरानी रखे। न्यायालय ने कहा कि 15-20

हजार के कर्ज लेने वाले किसानों से इस वसूल करने के सभा उपाय किए जाते हैं, जबकि हजारों करोड़ रु. का कर्ज लेने वाले अपनी कंपनियों को दिवालिया बताकर विदेशों में मजे उड़ा रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि एक समाचार पत्र में आरटीआई के हवाले से छपी इस खबर पर कि 29 सरकारी बैंकों ने 2013 से 2015 के बीच करीब 2.11 लाख करोड़ रुपये के कर्ज के मामलों को बंद कर दिया है। स्वतः संज्ञान लेते

रोकने व डूबे हुए कर्ज की वसूली के लिए कई कानून हैं। लेकिन इन कानूनों से कई कारगर परिणाम नहीं मिल पा रहे हैं। कारण यह है कि उनका प्रवर्तन सही ढंग से नहीं हो पा रहा है। उदाहरण के लिए बैंक ऋण वसूली पंचाट (डीआरटी) पर भरोसा करते हैं, जिसका गठन सन् 1993 के कानून के तहत किया गया था ताकि वित्तीय संस्थान ऋण वसूली कर सकें। नियम के मुताबिक ऋण मामलों का छह माह के

भीतर निपटारा होना चाहिए, लेकिन यह नहीं हो पा रहा है। देशभर में सारे पंचाट मिलकर भी सालभर में 12 हजार से ज्यादा मामले नहीं निपटा पा रहे हैं। इस समय देशभर में कार्यरत कोई 33 पंचाट में करीब 60 हजार से अधिक मामले लंबित हैं। इनमें बैंकों के 38 खरब रुपये से भी अधिक की धनराशि फंसी हुई है। चिंता की बात यह भी है कि पंचाटों में करीब 10 फीसद मामलों में ही वसूली हो पाती है। भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर रघुराम राजन का भी मानना है कि बैंकिंग क्षेत्र में बुनियादी सुधार से देश की अपनी आर्थिक वृद्धि की संभावनाओं का पूरा लाभ



उठाने में मदद मिल सकती है। उनका मानना है कि रणनीतिक रूप से बैंकों के संकटग्रस्त कर्ज के बट्टे खाते में डालना इस समय नरमी के खिलाफ मरहम का काम कर सकता है। हालांकि उन्होंने स्वीकार किया कि बड़े पैमाने पर संपत्तियों को बट्टे खाते में डालना राजनीतिक स्तर पर कठिन है। वस्तुतः बैंकों को यह अधिकार दिया जाना चाहिए कि बैंक दोषी कंपनियों का प्रबंधन अपने हाथ में लेकर अपने कर्ज की वसूली के लिए रणनीतिक प्रयास करें। हम आशा करें कि सरकार भारत में बैंकिंग सुधार तेजी से लागू करेगी। इससे जहां एक ओर बैंकों के साथ होने वाली धोखाधड़ी पर नियंत्रण होगा, एनपीए की चिंताएं कम होगी। वहीं दूसरी ओर, सार्वजनिक बैंक मजबूत बनकर अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का सामना करते हुए अर्थव्यवस्था को गतिशील कर सकेंगे। हम आशा करें कि सरकार और रिजर्व बैंक द्वारा कर्ज के परिप्रेक्ष्य में सुप्रीम कोर्ट की गरीबों की कुर्की और अमीरों की ढील की सख्त टिप्पणी पर गंभीरता से ध्यान दिया जाएगा और बैंकों के बड़े बकायादारों के नाम जगजाहिर किए जाएंगे।

यद्यपि देश में बैंकिंग क्षेत्र में धोखाधड़ी

## बैंक-एनपीए

जयंती लाल भंडारी



बड़े बैंक द्वारा बकायादारों को दी जा रही ढील के कारण न केवल देश का बैंकिंग क्षेत्र संपूर्ण अर्थव्यवस्था चिंताग्रस्त है। दिसम्बर 2015 के अंत तक सार्वजनिक बैंकों की सकल गैर निष्पादित आस्तियां (एनपीए) 3.61 लाख करोड़ रुपये हो गई हैं जबकि निजी बैंकों की एनपीए 39,859 करोड़ रुपये हो गई है। 70 फीसद के करीब एनपीए औद्योगिक घरानों का है

यद्यपि देश में बैंकिंग क्षेत्र में धोखाधड़ी